ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग - 1)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित उपदेशशुद्धसार की विविध गाथाओं पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन

भाद्र कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक - १२-०९-१९६३
गाथा-४९२-४९३, प्रवचन-१

यह एक तारणस्वामी रचित उपदेशशुद्धसार है। इसमें क्या कहा जाता है कि सर्वज्ञ परमात्मा का उपदेश मुख्य साररूप क्या है? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव का सार—उपदेश क्या है कि जिसमें आत्मा का मोक्षमार्ग प्रगट हो? मोक्षमार्ग का अधिकार लिया है। देखो, ४९२ गाथा है।

अप्पं च अप्प तारं, नाव विषेसं च पार गच्छंति।
अप्प ममल सरूवं, कम्मं कम्मं षिपिऊन तिविहि जोएन ॥४९२ ॥

पहला शब्द आया है, देखो। '**अप्पं च अप्प तारं,' यह आतमा आप ही अपने को तारनेवाला है...** ऐसा उपदेश चले, उसका नाम सच्चा उपदेश कहने में आता है। यह यहाँ कहते हैं। जो उपदेश, यह उपदेश है न? तो जिस उपदेश में ऐसा कहने में आता है कि '**अप्पं च अप्प तारं,**' भगवान आत्मा अपना शुद्ध निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है, वही स्वयं अपने को तारता है। लो! दूसरा कोई तारनेवाला नहीं। देव, गुरु और शास्त्र भी अपने को तारे, ऐसा उपदेश हो तो वह उपदेश शुद्ध नहीं है। समझ में आया? वह

उपदेश शुद्ध नहीं। इसके लिये कहते हैं। उपदेश शुद्ध उसे कहते हैं कि जिसमें '**अप्पं च अप्प तारं,**' अपना आत्मा, यह आत्मा किसे कहते हैं ? यह विशेष आगे लेंगे। समझ में आया ? यह अनन्त गुण है या नहीं ? इसमें होंगे अनन्त गुण, नहीं ? अनन्त गुण। पृष्ठ ४१ है, भाई ! पृष्ठ इसमें ४१ है न। उसमें ही ४१ पृष्ठ है। १४१। यहाँ तो अनन्त गुण स्थापित करना है। खबर नहीं कि एक द्रव्य में अनन्तगुण हैं। कहो, शोभालालजी !

यह ५५ गाथा। १४१ पृष्ठ पर देखो। उपदेश शुद्ध में ऐसा आता है... ५५ है न ? कि,

लीनं अनन्तंतं, लीनं सुभाव न्यान सहकारं।
एयं च गुन विसुद्धं, एयं तिक्तंति सरनि संसारे॥५५॥

देखो, पहले तो कि एक आत्मा में यहाँ '**अप्प तारं**' है न पहला शब्द ? '**अप्पं च अप्प तारं,**' परन्तु यह आत्मा है कैसा ? कि जिसमें अनन्त गुण हैं। महेन्द्रभाई ! समझ में आया ? अनन्त गुण हैं। अभी अनन्त गुण की खबर नहीं तो आत्मा समझे बिना किसका विचार करे और ध्यान करे ? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक आत्मा में देखो, '**लीनं अनन्तंतं**' साधु की प्रधानता से कथन है। तो साधु... सम्यग्दृष्टि भी उसमें आ जाता है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वह द्रव्य में अनन्त गुण है, अनन्त गुण है। संख्या से अनन्त, हों ! अनन्त काल रहनेवाले हैं, ऐसा नहीं। अनन्त काल रहेंगे, यह तो काल की अपेक्षा है। क्या कहा ? क्या कहा ? संख्या से अनन्त हैं। अनन्त काल रहेंगे, यह अलग, वह तो काल की अपेक्षा आयी।

एक वस्तु अपना आत्मा, उसमें संख्या से अनन्त गुण हैं। एक ज्ञान, एक दर्शन, एक आनन्द, एक अस्तित्व, एक वस्तुत्व—ऐसे एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। अभी अनन्त गुण क्या है, उसकी खबर नहीं तो आत्मा एकरूप, उसकी उसे खबर पड़ती नहीं। '**लीनं अनन्तंतं**' उपदेश शुद्ध भगवान की वाणी में ऐसा आया, ऐसा यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि शुद्ध उपदेश शुद्धसार उसे कहते हैं कि एक आत्मा में अनन्त गुण, ऐसे अनन्त आत्मा, ऐसे अनन्त आत्मा तो एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसमें लीन। देखो, अनन्तानन्त गुण में—स्वभाव में लीन रहता है।

'सुभाव न्याय सहकारं।' आत्मज्ञान की सहायता समभाव से तन्मय। वीतरागभाव है न साथ में? दृष्टि अनन्त गुण के पिण्डरूप आत्मा के ऊपर रही और उसमें समभाव आया। अरागी-वीतरागी निर्विकल्प परिणाम का सहकार मिला।

'एयं च गुन विसुद्धं' कि जो पंच महाव्रत, निश्चय से तो पाँच महाव्रत लो अन्दर में निर्मलानन्द में रहना, वह पंच महाव्रत है। अहिंसा आदि राग विकल्प पंच महाव्रत का उठता है, वह भी राग है। वह भी वास्तव में तो हिंसा है व्यवहार। अन्तर चिदानन्द अनन्त गुण का निर्विकल्प स्वभाव में अहिंसा अर्थात् लीनता होना, उसका नाम अहिंसा है। वही सत्यस्वरूप परमानन्द अनन्त गुण के पिण्ड में लीन होना, वह सत्य व्रत है। समझ में आया? ऐसा अपना स्वरूप पूर्णानन्द एक राग का कण भी लेना नहीं, अपने स्वरूप में अदत्तपना अर्थात् पर का लिये बिना अपने अनन्त आनन्द को ग्रहण करके लीन होना, इसका नाम अदत्त (अचौर्य) महाव्रत है। और ब्रह्म महाव्रत। ब्रह्मानन्दस्वरूप अपना शुद्ध, उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य महाव्रत है और परिग्रह का एक कण नहीं, परन्तु अपने पूर्णानन्द को पकड़कर, अनन्त गुण को पकड़कर परि-ग्रह अर्थात् उसमें लीन होना, उसे पाँचवाँ महाव्रत कहा जाता है। बाबूलालजी! बात सब दूसरी है बहुत।

देखो, **'वित्कंति सरनि संसारे'** इन पाँच गुणों के प्रभाव से संसार के मार्ग में यह पाँच महाव्रत के विकल्प नहीं लेना, हों! समझ में आया? विकल्प नहीं लेना। पंच महाव्रत जो अट्ठाईस मूलगुण में आते हैं, वह तो राग है, वह तो आस्रव है। अन्तर स्वरूप के अन्दर में जो अभी कहा, उस प्रकार से **'वित्कंति सरनि संसारे'** संसाररूपी... उससे तिर जाता है, उससे तिर जाता है। देखो, इसमें लिखा है। साधु आत्मा की अनन्ता अनन्त शक्तियों को पहिचाननेवाला होता है। आत्मा अपने अनन्त गुण-पर्याय का समुदाय है। उसमें अनन्ता अनन्त में यह आया। अनन्त गुण का समुदाय आत्मा है। समझ में आया? निश्चयनय द्वारा उन जगत के आत्माओं को देखता है। अपने में अनन्त गुण हैं, ऐसे प्रत्येक आत्मा में अनन्त गुण हैं, ऐसा ज्ञानी देखता है। ऐसा उपदेश हो, उसका नाम शुद्ध उपदेश कहा जाता है। उसका नाम उपदेशशुद्धसार कहा जाता है। समझ में आया? कहते हैं... यहाँ तो अनन्त की बात करनी थी।

'अप्पं च अप्प तारं' आत्मा ऐसा **'अप्पं'** अर्थात् अनन्त गुणवाला... यह ४९२।

जो चलता है वह। यहाँ तो यह दृष्टान्त दिया था। २८५ पृष्ठ पर ४९२। वह बराबर खबर नहीं हो इसे। सुने नहीं न। समझ में आया? क्या कहते हैं? **यह आत्मा आप ही अपने को तारनेवाला है...** सब निकाल दिया। देव-गुरु-शास्त्र भी तारते हैं, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। व्यवहार का कथन निमित्त का (कथन) है। अपना स्वरूप अखण्डानन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड जो अपना सहज स्वभाव है, ऐसी अन्तर में दृष्टि और ज्ञान और रमणता करने से... मोक्षमार्ग है न? तो ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि और उसके स्वज्ञेय का ज्ञान करके उसमें लीन होना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है। उस मोक्षमार्ग का नाम इस कारण से लिया है। समझ में आया?

'अप्पं च अप्प तारं' **आप ही अपने को... 'आप ही'** 'ही' शब्द है न? निश्चय से अपने को आत्मा तारता है। दूसरा कोई तारनेवाला है ही नहीं। बराबर है? रामस्वरूपजी! तो भगवान को तारणतरण कहा जाता है न? वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। अपना आत्मा अपने से तिरता है, तब उपदेशक जो ज्ञानी मिले, उनके निमित्त से कहने में आया है कि आप तारणतरण हो, ऐसा व्यवहार से कहने में आया। वास्तव में उपदेश का सार तो यह आना चाहिए। आत्मा निर्विकल्प अखण्डानन्द प्रभु अपनी शक्ति के अवलम्बन से स्वयं से अपने को तारता है। इसके तीन अर्थ आये, कि सम्यग्दर्शन भी अपने आत्मा से होता है। जो तिरने का उपाय है, वह अपने से होता है। और सम्यग्ज्ञान भी अपने आत्मा के आश्रय से होता है और सम्यक्चारित्र भी **'अप्प तारं'** अर्थात् तिरने का मार्ग जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह चारित्र भी अपने से होता है। कहो, बाबूलालजी! अन्दर में अभी शब्द पड़े नहीं। क्या कहते हैं तारणस्वामी? पूरा समाज पड़ा है, परन्तु तारणस्वामी क्या कहते हैं, खबर है? शोभालालजी!

'अप्पं च अप्प तारं' यह एक शब्द यहाँ लिया। **'नाव विषेसं च पार गच्छंति'** देखो, अब दृष्टान्त दिया, दृष्टान्त दिया। **जैसे कोई नौका विशेष आप से आप ही समुद्र के पार आ जाती है...** पवन की आवश्यकता नहीं। अपने आप पार हो जाती है। उसी प्रकार आत्मा अपनी नौका द्वारा समुद्र के किनारे—संसार के किनारे आकर स्वयं ही पार कर लेता है। नौका का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? **'अप्प ममल सरूवं'** कैसा है?

कि आत्मा एक विमलस्वरूप, शुद्ध चिदानन्द अनादि-अनन्त पवित्र का पिण्ड शुद्ध है और विमलस्वरूप, ऐसा यदि कहो तो शुद्ध जैसा त्रिकाल है, उसका शुद्धोपयोग करने से ही मुक्ति को प्राप्त होता है। शुभाशुभ परिणाम बीच में आते हैं, वह मुक्ति का कारण नहीं। यह मोक्षमार्ग में तारणस्वामी कहते हैं।

मुमुक्षु : मल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल कहते हैं। अभी आयेगा, यह भी आयेगा। यह पुण्य-पाप में है न! यह पृष्ठ ६६ है, भाई! यह ५८। ५८ है देखो, ५८। यह पृष्ठ ध्यान रखकर रखना। यह वापस रखना। यह तो दृष्टान्तरूप से आता है। पहले ५७ पृष्ठ लो, निश्चय समकित। ५७। देखो, निश्चय समकित। यहाँ मोक्षमार्ग में पहले निश्चय समकित होता है तो पहले वहाँ बता दिया है। यहाँ तो तीनों की एकता बतायी है।

सम्मत्त सुद्ध सुद्धं, सुद्धं दर्सेइ विमल रूवेन।
कम्मं तिविहि विमुक्कं, रागं दोषं च गारवं षिपनं॥७६॥

'**सम्मत्त सुद्ध सुद्धं**' देखो, परम शुद्ध सम्यग्दर्शन, '**सुद्ध सुद्धं**' का अर्थ परम शुद्ध। भाई! दो शब्द है न? परम शुद्ध निर्विकल्प अपना (सम्यग्दर्शन)। जो व्यवहार समकित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह परम शुद्ध समकित नहीं। समझ में आया? सात तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा भी परम समकित नहीं। '**सम्मत्त सुद्ध सुद्धं**' अकेला परम शुद्ध परमानन्दमूर्ति अखण्ड अनन्त गुण जो पहले कहे, ऐसे एकरूप पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन शुद्ध निर्विकल्प उत्पन्न होता है। उसे उपदेश शुद्ध में ऐसा कहा कि वही समकित है, दूसरे किसी को समकित कहना नहीं। यह उपदेश में ऐसा आता है। उपदेशशुद्धसार में ऐसा उपदेश हो, वह यथार्थ उपदेश है, दूसरा उपदेश, वह यथार्थ उपदेश है नहीं। समझ में आया? लो, फिर।

'**सुद्धं दर्सेइ विमल रूवेन**' निर्मल स्वभाव से आत्मा को शुद्ध भावकर्म, नोकर्म, द्रव्यकर्म से भिन्न श्रद्धा में लिया जाता है। देखो, अपना आत्मा जड़कर्म से भिन्न, नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी से भिन्न और पुण्य-पाप का विकल्प जो राग उठता है दया, दान, व्रत, भक्ति, उससे भिन्न। ऐसे द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से भिन्न श्रद्धा में लिया

जाये, अन्तर्दृष्टि अनुभव में लिया जाये, उसे निश्चय समकित शुद्ध उपदेश में भगवान की वाणी में ऐसा आया है। शोभालालजी! कठिन बात है, हों! यह लोगों को, साधारण पण्डितों को खटके, ऐसी चीज़ है। अकेला निश्चय स्वभाव स्वयं से... हो, आता है, विकल्प होता है, राग होता है, परन्तु वह बन्ध का मार्ग बीच में आता है, वह मोक्ष का मार्ग है नहीं। समझ में आया?

और '**रागं दोषं च गारवं षिपनं**' देखो, कैसा है निश्चय समकित? कि अपने शुद्ध स्वरूप की अन्तर निर्विकल्प प्रतीति के भान द्वारा संसार के राग-द्वेष मदों का जहाँ त्याग किया जाता है। जहाँ राग का अभाव हो जाता है, सम्यग्दृष्टि के विषय में राग विषय होता ही नहीं। निश्चय समकितदृष्टि के विषय में अखण्ड आत्मा पूर्णानन्द ही विषय है। जिसमें समकित के कारण से राग-द्वेष नाश होते हैं। उसके बाद दूसरा। यह ५८ पृष्ठ पर। ५८-५८। अपने लेना है इसे? पुण्य-पाप। देखो, शुद्ध उपदेश समकित में ऐसा आना चाहिए, उसका शुद्ध उपदेश भगवान का कहा जाता है। कि

.....

शुद्ध उपदेश, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! यह सूक्ष्म बात है। अन्दर बुद्धि बहुत तीव्र होनी चाहिए। ऐसा नहीं चलता कि हमको थोड़ी बुद्धि है, क्या करें? भाई! यह समझ लें, लो। यह भाई बाबूलालजी बुद्धिवाले हैं, ये समझे, हम क्या करें? नहीं, सबको यथार्थ समझना पड़ेगा। समझ में आया? तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वभाव को दूर कर देता है। विपरीत अभिप्राय को रखता नहीं। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र, नौ तत्त्व में विपरीतता, छह द्रव्य आदि में विपरीत भाव, वह सब छोड़ देता है। ... पुण्य-पाप का राग, इन्द्रिय-विषय का राग, वह नहीं रखता। देखो, ... पुण्य और पाप और पर विषय की ओर का लक्ष्य छोड़ देता है। ... पुण्य-पाप को भी खपानेयोग्य मानता है। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव सम्यग्दृष्टि नाश करनेयोग्य मानता है, आदरनेयोग्य नहीं। बरैयाजी कहते हैं न, पुण्य के ऊपर तो यहाँ बड़ी... क्या कहते हैं? दुर्दशा हुई। देखो! यहाँ तारणस्वामी क्या कहते हैं? समझ में आया? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो, ... पुण्य और पाप का भाव, उसका बन्धन और उसका सब विषय पर है, ऐसा यहाँ कहते हैं। शुभ-अशुभभाव है न, तो उसका विषय पर है। शुभाशुभराग आत्मा को विषय नहीं कर सकते। शुभराग आता है, होता है, परन्तु उसका विषय देव-गुरु-शास्त्र आदि पर है। तो शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप और उसका विषय लक्ष्य सब नाश करने की दृष्टि समकितदृष्टि की होती है। समझ में आया? विषय उसे नहीं रहता। ... कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान वहाँ नहीं है। कुज्ञान जो सर्वज्ञ से विपरीत कोई माननेवाले, त्रिलोकनाथ आत्मा परमात्मा ने जो अनन्त गुण आत्मा कहा, उससे कोई विपरीत कहनेवाला हो तो उसका ज्ञान सम्यग्दृष्टि के पास रहता नहीं। कुज्ञान का नाश कर डालता है। कुमति को, कुश्रुत को और विभंग को नाश करता है। अथवा... तीन शब्द पड़े हैं न? संशय, विमोह और विभ्रम दोष है। उसका नाश करता है। जहाँ नहीं संशय, विमोह और विभ्रम। अज्ञान के तीन प्रकार के दोष है। संशय—ऐसा होगा या ऐसा होगा? यह कहते हैं, वह सच्चा होगा या यह कहते हैं, वह सच्चा होगा? कुछ खबर पड़ती नहीं। इनको माननेवाले थोड़े तो इनकी बात सच्ची होगी? या इनकी सच्ची होगी? ऐसा संशय सम्यग्दृष्टि नहीं रखते। ऐसा शुद्ध उपदेश में आया है।

विमोह—विमोह अर्थात् विपरीतता अथवा अनिश्चितता। कुछ होगा, अपने को पता लगता नहीं। क्या होगा? सन्त क्या कहते हैं? सर्वज्ञ क्या कहते हैं? ऐसा विमोह सम्यग्दृष्टि को विमोह होता नहीं। यह अज्ञान के तीन दोष हैं। संशय, विमोह और विभ्रम। तीन दोष हैं और विभ्रम—विपरीत। अत्यन्त विपरीत मान्यता। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अनन्त गुणवाला एक आत्मा, अनन्त गुणवाला एक परमाणु, ऐसे अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा कहे, उनसे विरुद्ध कहनेवाले में कुछ विपरीत होगा या नहीं? कोई मान्यता सम्यग्दृष्टि को रहती नहीं। नाश कर डालता है अपने स्वरूप में। ऐसा उपदेश होता है, उसे इष्ट उपदेश कहा जाता है।

यह इष्टोपदेश है न भाई अपने? पूज्यपादस्वामी का। पूज्यपादस्वामी का इष्टोपदेश। यह उपदेशशुद्धसार कहा। उन्होंने इष्टोपदेश कहा है। इष्ट उपदेश किसे कहते हैं?

पूज्यपादस्वामी जो तत्त्वार्थसूत्र की टीका करनेवाले हुए। उसमें करते-करते ऐसा लिया है कि देखो, सुनो, उसे इष्ट उपदेश कहते हैं कि कोई भी द्रव्य अपना कार्य करे, तब साथ में जो निमित्त है, वह उदासीन है। उसके कारण से होता नहीं। धर्मास्तिकायवत्, ऐसा ३५ गाथा में वहाँ पड़ा है। इष्टोपदेश उसे कहते हैं।

यहाँ यह कहते हैं, देखो, समझ में आया? पर का विषय और परसम्बन्धी शुभाशुभभाव के लक्ष्य से जो राग उत्पन्न होता है, वह सम्यग्दृष्टि को नाश करनेयोग्य है। रखनेयोग्य और उपादेय है, ऐसा सम्यग्दृष्टि तीन काल—तीन लोक में मानता नहीं। समझ में आया? यह ३५ गाथा में... समझ में आया? धर्मास्तिकायवत्, ऐसा कहा है। इष्ट उपदेश किसे कहते हैं? कि प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्याय का कार्य करता है तो, जैसे गति करने में जीव-पुद्गल स्वयं गति करते हैं, तब धर्मास्तिकाय उदासीन निमित्त है, कोई उसे प्रेरक होकर चलाता है, ऐसा नहीं है। ऐसे उपदेश को इष्टोपदेश कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि जिसमें पुण्य और पाप और पुण्य-पाप का लक्ष्य जो पर के ऊपर जाता है, उसका नाश करने का उपदेश दे, उसका नाम शुद्ध उपदेश कहने में आता है। निमित्त और पुण्य-पाप दोनों चढ़ा दिये। समझ में आया? राजारामजी! समझ में आया? देखो, जो राग पर की ओर का लक्ष्य कराता है, राग में तो पर का ही लक्ष्य है न शुभाशुभभाव में? शुभभाव में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग, नाम स्मरण का और अशुभ में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कमाने का, तो वह शुभ-अशुभ का विषय और शुभाशुभ सबका लक्ष्य छोड़कर अपने शुद्ध चिदानन्द में, आनन्द में दृष्टि करना, इसका नाम भगवान के शुद्ध उपदेश को उपदेश कहते हैं। दूसरा उपदेश, उसे उपदेश नहीं कहते। वह उपदेश है। ऐसा कोई कहे कि ऐसे लाभ होगा, पुण्य से लाभ होगा, धर्म होगा। पाप से ऐसे होगा, परलक्ष्य करते-करते स्वलक्ष्य आ जाएगा, वह उपदेश भगवान के घर का नहीं है। वह अज्ञानी के घर का उपदेश है, उसे शुद्ध उपदेश नहीं कहा जाता। समझ में आया? समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बात है।

देखो, यह तारणस्वामी यह कहते हैं। तो तारण समाज में इसकी कुछ प्रथा होनी चाहिए या नहीं? क्यों बरैयाजी! बड़े भाई को कहते हैं जरा। इसे समझना पड़ेगा, क्या

कहते हैं। ऐसे समझे बिना देव-गुरु को मानना, वह मान्यता सच्ची नहीं। 'देव-गुरु-धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो?' यह क्या कहते हैं, इसकी श्रद्धा की खबर नहीं और तू कहता है कि मुझे मान्य है। देव मान्य है, गुरु मान्य है। कहाँ से आया मानना तुझे? यह कहते हैं, ऐसी श्रद्धा की तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा हमको है, परन्तु देव-गुरु क्या कहते हैं, उसकी तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : वह तो सच्चा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सच्चा कहते हैं? उसकी तो खबर भी नहीं। सच्चा क्या और झूठा क्या है? 'देव गुरु धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो? और शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करे छार पर लींपणुं तेह जाणो।' छार समझते हो? यह राखोड़ी—राख होती है न? राख के ऊपर लींपण, बस। धूल में भी नहीं रहता उसमें। इसी प्रकार शुद्ध श्रद्धा के भान बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा सच्ची नहीं और उसके क्रियाकाण्ड करके मर जाये, पंच महाव्रत और बारह-बारह महीने के अपवास करके मर जाये, परन्तु उसे कुछ लाभ नहीं होता। समझ में आया?

विभ्रम दोष। ... संसार में भ्रमण कराने का मोहान्तभाव भी वहाँ नहीं। मोहान्तदर्शन—मोह अन्ध—जिसमें चैतन्य क्या चीज़ है? पूर्णानन्द क्या है, उसकी खबर नहीं, ऐसा मोह अन्धकार का तो ज्ञानी नाश कर डालता है। यह दृष्टान्त दिया। समझ में आया? अब यहाँ अपने। यह आ गया न पुण्य-पाप में?

अप्पं च अप्प तारं, नाव विषेसं च पार गच्छंति।
अप्प ममल सरूवं, कम्मं कम्मं षिपिऊन तिविहि जोएन ॥४९२॥

तीन प्रकार का योग जो है, उसका लक्ष्य छोड़कर अपने आत्मा के आश्रय से जो तीन प्रकार के योग का नाश करता है। कहो, समझ में आया? वहाँ शुद्ध उपयोग लिया है। शुद्ध उपयोग। क्या कहते हैं? कि शुभ-अशुभभाव हो, परन्तु शुभ-अशुभभाव सम्यग्दर्शन का कारण है, सम्यग्ज्ञान का कारण है या सम्यक् चारित्र का कारण है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? उसका नाश करने का उपाय कहे, ऐसा शुद्ध उपदेश आना चाहिए कि अपना स्वभाव एकरूप है। यह दृष्टान्त दिया था न उसमें? श्रावकाचार

में दिया था न ? कछुआ—कछुआ। उसमें भी आता है, उस ४०१ पृष्ठ पर, नहीं ? ४०१ पृष्ठ। परन्तु अपने वह मछली का दृष्टान्त है न इसमें ? है ? यह पृष्ठ १३। पृष्ठ १३ है न। १३ पृष्ठ पर, देखो ! यह पहले तो ११ गाथा। १३ पृष्ठ पर है न ११ (गाथा) ?

उवएस नंतनंत, नंत चतुष्ट सुदिस्ट विमलं च।
मलं सुभाव न दिट्ठं, विमल दिट्ठि चे देइ अषयं च॥११॥

है ? एक तो अर्हंतदेव, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य—ऐसे चार अनन्त (चतुष्टय के) धारी हैं। सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा की पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। समझ में आया ? एक बात। अनन्त चतुष्टय यह एक बात की। **'सुदिस्ट विमलं च' उनके निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन है...** भगवान सर्वज्ञ के पास क्षायिक सम्यग्दर्शन है। दूसरी बात। **'मलं सुभाव न दिट्ठं' कोई रागादि से मलिन स्वभाव उनमें नहीं दिखता...** भगवान के पास राग-विकल्प उपदेश देने का कोई विकल्प है नहीं। एक बात।

पश्चात्। **'उवएस नंतनंत'** अनन्तानन्त पदार्थों का परम गम्भीर उपदेश देते हैं। यह दो शब्द पड़े हैं न ? **'उवएस नंतनंत'** भाई ! दो शब्द हैं। शुद्ध उपदेश में, वीतराग के उपदेश में शुद्ध उपदेश उसे कहते हैं कि अनन्त पदार्थ जगत में अनन्त पदार्थ हैं। पहले अनन्त गुण कहे थे एक द्रव्य में। यहाँ अनन्त पदार्थ हैं। एक नहीं, अनन्ता अनन्त। दो अनन्त शब्द लिये हैं न ? तो एक में इन्होंने ऐसा कहा कि अनन्त पदार्थों का अनन्त, गम्भीर उपदेश उसमें आता है। गम्भीर गुण, गम्भीर पर्याय। गम्भीर समझे ? गहराई। एक-एक द्रव्य में गुण-पर्याय की गम्भीरता पड़ी है। ऐसे अनन्ता-अनन्त पदार्थों का उपदेश वीतराग की वाणी में आता है। कहो, किसके साथ तुलना करना ? डेरैयाजी ! भाई इसमें कुछ है, इसमें कुछ है। वेदान्त में है। अर्थात् वह भी बड़ा ... साधु हो गया है। अरे ! तारणस्वामी तो कहते हैं कि ऐसे अनन्तानन्त एक पदार्थ में गुण, ऐसे अनन्ता अनन्त पदार्थ हैं, ऐसा उपदेश जिसमें नहीं, वह उपदेश वृथा-मिथ्या उपदेश है। कहो, सेठ ! समझ में आया ?

परम जैन परमेश्वर के भक्त से यथार्थ बात जो जैन परमेश्वर की थी, उसने ऐसा

कहा है। उसके साथ दूसरे की तुलना करे तो तुलना हो नहीं सकती। समझ में आया? दूसरे कहे कि, लो ऐसा हुआ... ऐसे हुए... कबीर हुए, दादु हुए। यह अध्यात्मवाणी है। अरे! कहाँ वह वाणी और कहाँ यह वाणी! इसकी तो खबर भी नहीं कि अध्यात्म क्या है? समझ में आया? ऐसी गड़बड़ कर दी, हों सेठ ने। बड़ी पुस्तक में गड़बड़ की है। सेठ के सिर पर ही डाली जाये न। बड़े के सिर पर न डाले तो किसके सिर पर डाले? बड़े में ... बहुत पड़ते हैं। समझ में आया?

तारणस्वामी तो जैन के परम वस्तु का स्वरूप समझकर कहते हैं। उनकी दूसरे के साथ तुलना नहीं होती। मूर्ति का नहीं कहा और दूसरे ने मूर्ति को कहा, इसलिए अध्यात्म हो गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? अनन्ता-अनन्त पदार्थों का परम गम्भीर उपदेश है। वापस अनन्त अर्थात् परम गम्भीर, ऐसा लिया। महागम्भीर उपदेश। एक-एक द्रव्य। आहाहा! एक-एक परमाणु, जिसमें अनन्त गुण और एक गुण की एक समय की एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय। भाई पूछते थे न, द्रव्य-गुण-पर्याय? द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रश्न नहीं था तुम्हारा? द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रश्न। देखो, यहाँ कहते हैं तारणस्वामी कि अनन्ता-अनन्त पदार्थ अनादि-अनन्त हैं और एक-एक पदार्थ में अनन्ता-अनन्त गुण हैं और एक गुण की अनन्त-अनन्त त्रिकाल पर्याय है। डेरैयाजी! जवाबदारी बहुत है, हों! मानने में जरा। सुना नहीं, क्या कहा?

और '**विमल दिट्ठि चे देइ अषयं च**' निर्मल क्षायिक समकित की प्राप्ति करे। देखो, भगवान के उपदेश में... यहाँ तो क्षायिक की ही बात की, भाई! एकदम क्षायिक। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? मोहक्षयं। वह शैली ली है। क्षायिक समकित प्राप्त कराते हैं। भगवान के उपदेश में... शुद्ध उपदेश उसे कहते हैं चिदानन्द पूर्णानन्द आत्मा अखण्ड अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु, निर्विकल्प, उसकी दृष्टि करो, क्षायिक समकित हो जायेगा। और क्षायिक समकित केवलज्ञान को प्राप्त करायेगा। उस क्षायिक समकित से केवलज्ञान होगा। वापस गिरने का नहीं है। ऐसे भगवान सर्वज्ञ के उपदेश को शुद्ध उपदेश कहते हैं। तुम्हारे गिर जायेगा और फिर ऐसा होगा। अरे! चल-चल। देखो, यह दृष्टान्त अपने तो लेना है न? १२वीं गाथा।

परम देव सुभावं, अन्मोयं देइ न्याय सहकारं।
न्यानेन न्यान व्रिधं, जं श्रुति विध्रंति मच्छ अंडानं ॥१२॥

देखो, यह दृष्टान्त नया है, हों! गाँव में चलता होगा। यहाँ तो ऐसा चला नहीं। क्या कहते हैं, देखो, **परम देव (अरिहन्त) के स्वभाव का...** स्वभाव ऐसा है। '**परम देव सुभावं**' ऐसा शब्द पड़ा है न? परमदेव अरिहन्त का स्वभाव ऐसा है कि ऐसा उपदेश में आना चाहिए कि भगवान का स्वभाव यह है कि '**अन्मोयं देइ न्याय सहकारं।**' परम आनन्दकारी मूर्ति सहकारी ज्ञान को देता है। परम आनन्दरूपी मुक्ति, उसका साथ देनेवाला ज्ञान, ऐसा उपदेश भगवान करते हैं। परम आनन्द आत्मा में है, उसका ज्ञान करो, ऐसा उपदेश भगवान करते हैं। तब **ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है...** देखो, क्या? शास्त्र पढ़ने से नहीं, बाहर से नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

'**न्यानेन न्यान व्रिधं**' जो अपना स्वरूप शुद्ध सम्यक् चैतन्यदर्शन हुआ, सम्यग्दर्शन तो जिस ज्ञान में स्वज्ञेय का भान हुआ, वह सम्यग्ज्ञान ज्ञान को बढ़ाता है। ज्ञान से ज्ञान बढ़ता जाता है। जैसे दूज का चन्द्रमा, दूज का चन्द्रमा। दूज का चन्द्रमा पूर्णिमा को लाता ही है। उसी प्रकार देखो, '**न्यानेन न्यान**' बढ़ता है। देखो, है न? '**न्यानेन न्यान व्रिधं**' **ज्ञान से ज्ञान (स्वयं) बढ़ता है...** सम्यक् चैतन्य का शुद्धस्वरूप, उसकी दृष्टि सम्यक् हुई, ज्ञान स्वयं उसमें बढ़ता है। दृष्टान्त देते हैं। देखो, तारणस्वामी दृष्टान्त देते हैं। '**जं श्रुति विध्रंति मच्छ अंडानं।' जैसे—मछली अपने अण्डों की ही सूरत रखती है तो वह अपने आप बढ़ते हैं,...** रेत में दबाती है न। दृष्टान्त दिया है देखो, **अर्हंत भगवान के धर्मोपदेश द्वारा भव्य जीव को आत्मा-अनात्मा का भेदविज्ञान पैदा होता है। जिसके प्रताप से आत्मा का अनुभव ऐसा-ऐसा ... जाता है।** यह तो साधारण अर्थ किया है। अंकुर का काम करता है। अंकुर पैदा होते हैं न, फिर वृक्ष होता है। वह आत्मज्ञान के प्रभाव से ज्ञान बढ़ता जाता है।

जैसे—दूज का चन्द्रमा नित्य बढ़ते-बढ़ते पूर्णमासी का चन्द्रमा हो जाता है, वैसे यही ज्ञान केवलज्ञानमय हो जाता है। वह अपना ज्ञान करते... करते... करते... अन्दर में ज्ञायक को एकाकार करते-करते ज्ञान केवलज्ञान हो जाता है। समझ में आया? व्यवहारिक ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान, वह तो व्यवहारिक ज्ञान, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! सेठी! शास्त्रज्ञान भी ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ गया। परन्तु अपना ज्ञान चिदानन्दस्वरूप स्वसंवेदनज्ञान। ज्ञान से ज्ञान का वेदन करके जानना, वही सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, ज्ञान को बढ़ाता है, बस! क्रम-क्रम से दूज होकर। दूज-दूज। दूज बढ़कर पूर्णिमा हो जाती है। उसी प्रकार यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि अपना स्वरूप अन्दर में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। लो और यह याद आया। कहाँ है?

जैसे—मछली अपने अण्डों की ही सूरत रखती है तो वह अपने आप बढ़ते हैं,... देखो, क्या कहते हैं? वह मछली के अण्डे का दृष्टान्त दिया कि अण्डे के ऊपर उसका लक्ष्य रहा करता है। मछली का लक्ष्य वहाँ ही रहा करता है। उससे वे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का अपने ज्ञानस्वरूप में बारम्बार लक्ष्य रहता है। लक्ष्य करते-करते केवलज्ञान हो जाता है। सर्वज्ञस्वभाव है न वहाँ। इसके बाद की गाथा है न! यह एक है न। कछुए का दृष्टान्त कहाँ आया? श्रावकाचार। कहाँ आया? यह नया दृष्टान्त है, हों! कछुआ। यह श्रावकाचार में दृष्टान्त दिया है। उसके पहले ऐसा कहा कि ... अनेक पाठ पठनं। समझ में आया? अनेक पाठ का पढ़ना। शास्त्र का... नहीं वह शास्त्र। समझ में आया? 'अनेक पाठ पठनं' और 'अनेक क्रिया संजुतम' दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा कर-करके, बारह महीने के अपवास ऐसे करे, ऐसा खाना, ऐसा पीया, ऐसा लिया और ऐसा दिया, ऐसे अनेक प्रकार से व्यवहार क्रिया को पालना, अनेक प्रकार दान, देखो! शब्द पड़ा है। अनेकधा। क्या अनेकधा? अनेक प्रकार का दान। एक नहीं, बहुत दान देता है। उसमें दो... उसमें दो... उसमें दो... सबमें दो। अनेकधा। वृथा दान है तेरा। दर्शन शुद्धं न जानंती। कहो! यह तारणस्वामी कहते हैं, निकालो देखो। तारण समाज को मान्य करना पड़ेगा या नहीं? क्या? अनेक दान देते हैं। निरर्थक है। यदि शुद्ध सम्यग्दर्शन का अनुभव न किया जाये तो।

भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द पूर्ण... पुण्य पर पनौती पड़ी है। डेरैयाजी ऐसा कहते हैं न। पुण्य की तो दुर्दशा हुई। यहाँ तारणस्वामी भी दुर्दशा करते हैं। देखो, समझ में आया? होता है, बात होती है, अशुभ से बचने को शुभ आता है, परन्तु उसकी धर्म के अन्दर कोई कीमत नहीं है। समझ में आया? धर्म तो अन्दर निर्विकल्प शुद्ध आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता और वीतरागी परिणाम, वही मोक्षमार्ग है। दूसरा

मोक्षमार्ग दो प्रकार के हैं और तीन प्रकार का है—ऐसा तीन काल में नहीं है। उपदेश में, वीतराग के मार्ग में ऐसा नहीं आया। अज्ञानी ऐसी कल्पना करे तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? चलती गाथा।

दर्शनं यस्य हृदि दृष्टं, सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।
कमठी दृष्टि यथा अंडं, स्वयं वर्धति यं बुधै॥४००॥

४०० गाथा है श्रावकाचार की। देखो, श्रावक को भी कहते हैं कि तेरा ज्ञान भी अन्दर से बढ़ता है। दृष्टि स्वभाव शुद्ध कर तो ज्ञान उससे बढ़ता है। तेरी दृष्टि बारम्बार ज्ञान में जाना चाहिए। **जिसके मन में सम्यग्दर्शन विद्यमान है।** '**हृदि**' शब्द पड़ा है न? अर्थात् मन लिया है। मन नहीं, है तो आत्मा में। उसका हृदय अर्थात् आत्मा में। '**दर्शनं यस्य हृदि**' इसलिए अर्थ में मन लिया। परन्तु '**हृदि**' का अर्थ मन नहीं। अन्दर आत्मा में शुद्ध अखण्ड रागरहित, पुण्यरहित, पापरहित हो, उसे ज्ञेय बनाकर अपने स्वभाव सन्मुख की दृष्टि का भान हुआ, '**दृष्टं**' विद्यमान है। '**सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।**' उसे श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। देखो, बिना पढ़े। उसमें लिखा है। ... क्या कहते हैं? ऐसा कि समकिती साधु अभ्यास करके बारह अंग का पाठी हो जाता है। बारह अंग का पाठी हो जाता है न? चौदह पूर्व का... बारह अंग, चौदह पूर्व। समझ में आया? वह तो अन्दर में पड़ा है सर्वज्ञस्वभाव एक समय में भगवान आत्मा पूर्णानन्द एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभाव, सर्वज्ञस्वभावी है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।**' उसे श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। भावश्रुतज्ञान। चिदानन्द भगवान अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु के प्रकाश के ऊपर दृष्टि पड़ने से शुद्ध सम्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञान का प्रकाश बिना पढ़े होता जाता है, ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! यह पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े और विवेक का भान नहीं कि क्या वस्तु है? समझ में आया? क्या कहा, नहीं कहा वहाँ? 'पंड्या पांडे पांडे फोतरा खांडे' छिलके कूटता है, कहते हैं। फोतरा समझते हो? छिलका। छिलका होता है न? छिलका कूटकर अनाज निकले। धूल में भी नहीं (निकले)। चैतन्य एक समय में पूर्ण परमात्मा पूर्णानन्द भगवान जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई नहीं, उसका ज्ञान बढ़ता

नहीं, ज्ञान होता नहीं। ज्ञानी को तो अनेक प्रकार का श्रुतज्ञान बढ़ता ही जाता है।

'कमठी दृष्टि यथा अंडं, स्वयं वर्धति यं बुधै।' जैसे कछुए की दृष्टि से अण्डा स्वयं बढ़ता है। यह अपने लिये नया दृष्टान्त है। ये कछुए का अण्डा होता है न अण्डा? तो कहते हैं कि उस अण्डे पर उसकी बारम्बार दृष्टि जाती है। दृष्टि, हों! पक्षी उसके बच्चे को पंख से पोषता है। इसकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ती है तो बढ़ता ही जाता है। कछुए का बच्चा बढ़ता ही जाता है। समझ में आया? **जैसे—कछुए की दृष्टि से अण्डा स्वयं बढ़ता है। यह बुद्धिमानों का...** देखो, बुद्ध है न बुद्धि? **'स्वयं वर्धति यं बुधै' 'बुधै'** शब्द पड़ा है न अन्त में? इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी सम्यक् चैतन्यमूर्ति का निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान हुए, ऐसे ज्ञान में बारम्बार स्वसन्मुख का झुकाव होता है तो ज्ञान बढ़ता ही जाता है। बिना पढ़े, बिना वाँचे। पढ़े हुए-गुने हुए कहते हैं न? पढ़े हुए-गुने हुए। बाहर का पढ़ा हुआ-गुना हुआ। पढ़ा-गुना क्या है? चैतन्य में सब भरा है। ऐसा परिपूर्ण भगवान, देखो! ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे शुद्ध उपदेश में ऐसा आना चाहिए। बाहर के लक्ष्य से विकल्प से बहुत ज्ञान प्रगट होता है, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा कि बाहर के लक्ष्य से पठन करते-करते ज्ञान बढ़ेगा, यह उपदेश शुद्ध नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन के होने से जितना शास्त्रज्ञान होता है, वह सम्यग्ज्ञान नाम पाता है। सब ज्ञान। थोड़े अभ्यास से शुद्धात्मा के अनुभव के प्रताप से उसका शास्त्रज्ञान दिन-दिन बढ़ता जाता है। श्रुतज्ञान की बात है न! श्रुतज्ञान। वह आत्मा को पकड़ने की ओर का ज्ञान बढ़ता जाता है। बस, दूसरी बाहर की कोई धारणा बढ़ती है, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। देखो, महेन्द्रभाई! यह ज्ञान बढ़ता जाता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक है न तिर्यंच सम्यग्दृष्टि, उसका अन्तर में निर्मलज्ञान, शुद्ध ज्ञान बढ़ता जाता है। शुद्ध ज्ञान, हों! भावश्रुतज्ञान अन्तर में पकड़ने का बढ़ता जाता है। समझ में आया? समकिती असंख्य पड़े हैं ढाई द्वीप के बाहर। श्रावक समकिती चौथे गुणस्थानवाले, पाँचवें गुणस्थानवाले तिर्यंच।

तो कहते हैं कि **उसका अन्तर अनुभव के प्रताप...** बढ़ता। **जैसे—कछुए का**

अण्डा होता है। अण्डा कछुए की दृष्टि से बढ़ता जाता है। इसका कारण कि कछुए का निरन्तर ध्यान अण्डे की तरफ रहता है। कारण दिया। **उसके इस संकल्प के निमित्त से अण्डा बढ़ता जाता है।** यह तो निमित्त है, हों! उपादान तो उसकी पुष्टि है। समझ में आया? **उसी तरह समकिती का ध्यान निरन्तर तत्त्व अभ्यास में रहता है।** सम्यग्दृष्टि का निरन्तर तत्त्व अभ्यास ज्ञायकभाव अन्दर में बारम्बार क्या ... उसकी गाढ़ रुचि आत्मिक चर्चा के ऊपर रहती है। आत्मिक चर्चा के ऊपर गाढ़ रुचि है। विकथा की रुचि उड़ गयी है। शास्त्रज्ञान दिन-दिन ... अति रुचि से शास्त्र को देखना, वाँचना, उसका मन एकाग्र... ध्यान। **समकिती साधु बिना अभ्यास के द्वादशांग पाठी हो जाता है।** क्या बारह अंग का ज्ञान पढ़ने से आता है? बारह अंग। गौतम गणधर। एक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग। भगवान की वाणी खिरी जहाँ, विपुलाचल पर्वत राजगृही। है न पर्वत? सुनी। एकदम अन्तर्मुहूर्त में—दो घड़ी में बारह अंग का ज्ञान प्रगट हो गया। चार ज्ञान। क्या पढ़े और क्या लिखे। अन्तर भगवान...

हम समुद्र का दृष्टान्त देते हैं न! समुद्र है न, वह मध्यबिन्दु में। जब मध्यबिन्दु में से ज्वार आता है। भरती को क्या कहते हैं? बाढ़। बाढ़ (ज्वार) कहते हैं न? तो ज्वार आवे तो ११८ डिग्री बाहर की धूप हो। ११८ डिग्री धूप समझे? परन्तु ज्वार के काल में उसके ज्वार को रोकने में कोई समर्थ नहीं है। मध्यबिन्दु से समुद्र उछले। मध्यबिन्दु से ज्वार (उठे)। किनारे आता है न ज्वार? ११८ डिग्री हो। मध्यबिन्दु से ज्वार उछलता आता हो, उसे रोकने में कोई समर्थ नहीं है और जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसे २५-५० इंच वर्षा जैसे समुद्र में पड़े और भाटा का काल हो तो १०० नदियों का पानी और हजार इंच का पानी ऊपर से लावे, तीन काल में ला सकता नहीं। भाटा के काल में ज्वार आ सकता नहीं।

इसी प्रकार जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व में पड़ी है, पुण्य-पाप की रुचि पड़ी है, अल्पज्ञपना, इतना ही मैं हूँ, निमित्त को लाना-छोड़ना ऐसा मेरा अधिकार है, ऐसी दृष्टि मिथ्यात्व है, उसे पढ़ना-वाँचना लाख बात करे तो उसके ज्ञान में तो भाटा ही है। ओट को क्या कहते हैं? भाटा। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि बाहर के शास्त्र न वाँचे, मन का विकल्प न लगावे, अन्तर में ज्ञान की बारम्बार दृष्टि लगाता है तो अन्तर में से ज्ञान

का ज्वार आता है। मन, इन्द्रिय भले मन्द हो जाये। मन इन्द्रिय मन्द हो जाये, पठन-पाठन बन्द हो जाये, आँख भी मन्द हो जाये। अन्तर की दृष्टि शुद्ध अखण्ड आनन्द पर पड़ी है तो ज्ञान का पार उसमें हो जाता है। ऐसा है या नहीं? डेरैयाजी! ऐसा है या नहीं? देखो, सामने रखना पड़े। तुम होशियार व्यक्ति हो। विचारक है न। उसमें क्या है, उसका ध्यान रखना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया?

सब समकिती महिमा तब समकित के प्रभाव से केवलज्ञान हो जाता है, तो श्रुतज्ञान के लाभ में विशेष कठिनाई नहीं। जहाँ केवलज्ञान होता है, वहाँ फिर श्रुतज्ञान की क्या बात करना? भावश्रुतज्ञान से तो अपनी ताकत प्रगट हो जाती है। कहो, समझ में आया? ४०१ हुई न? यह ४०१ मोक्षमार्ग की, हों! उसमें है। कहा न? और देखो! फिर एक गाथा ली है ४०२ में। यह मछली का। अपने मछली आ गयी न? यहाँ आ गयी न? परन्तु वह दृष्टान्त आ गया न? उसमें बात आ गयी। उपदेशसार में... उसमें यह आ गयी।

दर्शनं हीन तपं कृत्वा, व्रत संजम पठं क्रिया।
चपलता हिंडि संसारे, जह जल सरनि ताल कीटऊ॥४०२॥

... होता है न? इसका मैल पानी में बहुत होता है। कहते हैं '**दर्शनं हीन तपं कृत्वा**' जिसे सर्वज्ञ परमात्मा जैसा आत्मा कहते हैं, ऐसे आत्मा की प्रतीति—दर्शन—श्रद्धा नहीं, भान नहीं, वह '**तपं कृत्वा**' तप करके मर जाये, सूख जाये बारह महीने के अपवास करके जंगल में योगी होकर नग्न रहकर। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञदेव कहते हैं, ऐसे एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, ऐसे अनन्त पदार्थ हैं, ऐसी अन्तर में श्रद्धा, अपनी श्रद्धासहित पर की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं, वह '**दर्शनं हीन तपं कृत्वा**' बाहर जंगल में रहता है, नग्न रहता है, कोई वस्त्र भी नहीं रखता, ऐसा खाता है, जड़ी-बूटी खाता है, बहुत ध्यान में करता है। मूढ़ है। आत्मा जैसा है, वैसी श्रद्धा का ज्ञान नहीं, अपना साक्षात्कार क्या, उसकी खबर नहीं।

'**व्रत संजम पठं क्रिया।**' देखो! उसके व्रत, संयम। '**पठं**' '**पठं**' अर्थात् पठन की क्रिया सब पालता है। '**चपलता हिंडि संसारे**' वह तो सब संसार है। चपलता अर्थात्

कषायभाव का विकार अन्तर में है। चपल अर्थात् अस्थिरता। विकार मिथ्यादृष्टि को विकार ही पड़ा है अन्दर में। तब उसे **'हिंडि संसारे'** संसार में **'हिंडि'** देखो भ्रमण करता है। गुजराती में नहीं कहते ? चलो हेंडो हेंडो। यहाँ गुजराती में हींडे कहते हैं। चलो हेंडो। हेंडो अर्थात् चलो। ऐसा। गुजराती की भाषा है। चलो। यहाँ गुजराती में हेंडो कहते हैं। ऐसा कहते हैं **'हिंडि संसारे'** संसार में भ्रमण करता है। हिंडन करता है, परिभ्रमण करता है। गुजरात का है या नहीं ? यह अहमदाबाद में कहते हैं या नहीं ? हेंडो... हेंडो। हेंडो बस यह। हेंडो भाई हेंडो। हेंडो अर्थात् चलो। इसी प्रकार यह चलो संसार में। **'हिंडि'** संसार में चलता है।

'जह जल सरनि ताल कीटऊ' ताड़ का दृष्टान्त दिया है। ताड़ के वृक्ष का मैल। वृक्ष होता है न, उसका मैल होता है न। पानी भटककर मैल चला जाता है पानी में दूर-दूर। इसी प्रकार अज्ञानी संसार में दूर-दूर भटकता है। और चलते-चलते तो आगे बहुत कहा न ! निगोदं गच्छई। तारणस्वामी तो बारम्बार निगोदं गच्छई (कहते हैं) । मिथ्यादृष्टि तेरी, चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु कौन है, उसकी प्रतीति-ज्ञान नहीं और अनन्त-अनन्त पदार्थ भगवान ने कहे, उसकी श्रद्धा तुझे नहीं, बस ! **'हिंडि'** चार गति में भटकता है। समझ में आया ? हो गया ? कितनी गाथा हुई यह ? यह तो है तारणस्वामी की श्रावकाचार की। बराबर।

देखो, क्या कहा ? ४९३ गाथा चलती है कि—

एकं जिनं सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।
अन्त चतुस्टय सहियं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥४९३ ॥

ओहो ! मोक्षमार्ग में क्या लिया ? कि सिद्धों का एक ही प्रकार का जिनस्वभाव है। इसी प्रकार मेरा भी एक ही प्रकार का जिन वीतरागस्वभाव है, ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। सिद्ध में और मुझमें कोई अन्तर नहीं। पर्याय में अन्तर है, उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ यह कहना है न ? **'एकं जिनं सरूवं,'** वीतराग जैसा एक स्वरूप है, वैसा मेरा भी एक स्वरूप अभेद शुद्ध चिदानन्द है। और जीतनेवाला है। वह तो अज्ञान और राग है ही नहीं सिद्ध में। उसी प्रकार मुझमें भी अज्ञान और राग है नहीं।

ऐसा अन्तर स्वरूप प्रगट करना और '**सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।**' उसने स्वयं कर्मबन्धन को काट दिया है। सिद्ध ने तो अपने स्वभाव के आश्रय से कर्म का नाश किया है। ऐसा मोक्षमार्ग का उपदेश ऐसा करना कि तेरे स्वभाव के आश्रय से ही विकार और कर्म का नाश होगा। किसी दूसरे कारण से कर्म का नाश होगा नहीं। उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। समझ में आया?

'**अन्त चतुस्टय सहियं**' भगवान अनन्त ज्ञानादि चतुष्टयसहित है। भगवान का ज्ञान पूर्ण प्रगट हो गया है। पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य। मैं भी पूर्ण अनन्त चतुष्टय से अन्दर भरपूर हूँ। यह मोक्षमार्ग की बात चलती है। समझ में आया? जैसे सिद्ध में प्रगट हुए हैं, ऐसे अनन्त चतुष्टय मेरे अन्दर परिपूर्ण है। ऐसी अन्तर्दृष्टि करना और उसका ज्ञान करके लीन होना, इसका नाम मोक्षमार्ग भगवान कहते हैं। ऐसा तारणस्वामी उपदेश में कहते हैं कि ऐसा उपदेश ही सच्चा है, दूसरे का उपदेश सच्चा नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो खबर नहीं। तुम भी सच्चे और हम भी सच्चे। चलो भाई! सेठ! क्या करे भाई! सबको साथ में रखो, सबको इकट्ठा करो। तुम हमारी महिमा करो, हम तुम्हारी करते हैं। समझ में आया? यह आया है, कहीं आया है। जनरंजन आया है कहीं। सब इकट्ठे हों। क्या कहते हैं? यह कुछ लिया है न भाई! जनरंजन का कहीं लिया है। जनरंजन की बात कहीं ली है। कहीं लिया है कि अज्ञानी लोक को अनुकूल कैसे रहे, उसके लिये प्रयत्न करता है। उपदेश ऐसा देना कि सब लोक रंजित रहे। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। उसमें बहुत कहा है। उसे तो जनरंजन करना है। किसमें? ९७ गाथा। लाओ भाई। देखो, उपदेश का सार। यहाँ है। ९७। ९० और ७। यह ९७ है, देखो! आहाहा! इसके पहले ९६ गाथा लो, देखो! देखो, ९६ में मूल तो है। यह ९६ कहनी थी, हों! देखो, ९६ गाथा है न उपदेश(शुद्ध)सार की?

रागं च राग सहियं, जनरंजन विकहा भाव संजुत्तं।
जिन द्रोही जिन उत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं॥९६॥

इस प्रकार के मिथ्यारागसहित ऐसा राग होता है कि **जहाँ लोगों को प्रसन्न करने के लिये...** विकथा कही जाती है। उस विकथा का अर्थ? शुभराग से धर्म होता है, यह कथा विकथा है।

मुमुक्षु : लोगों को प्रसन्न करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब लोग प्रसन्न हों। सबको खड़ा रखना। इन सेठियों को क्या करना? शोभालालजी को क्या करना? उन्हें भी थोड़ा प्रसन्न रखना। यह दान में भी तुम्हारा थोड़ा भाग है। चलो भाई आगे। शोभालालजी! कहते हैं, देखो, तारणस्वामी कहते हैं कि '**जनरंजन विकहा भाव**' विकथा का अर्थ? सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाली कथा। निमित्त से मुझे लाभ होता है, राग से मुझे धर्म होता है—ऐसी कथा करना, उसे यहाँ विकथा कहते हैं। धर्मकथा नहीं। कैसी है विकथा? देखो, '**जनरंजन**' '**जिन द्रोही**' जैनधर्म के द्रोही होते हैं। वीतरागभाव के द्रोही होते हैं। भगवान सर्वज्ञ के शुद्ध उपदेश में तो वीतरागभाव की दृष्टि आयी है। अपना स्वभाव वीतराग विज्ञानघन है, उसकी दृष्टि करो, उसका ज्ञान करो, उसमें लीन होओ, ऐसा उपदेश में आता है। दूसरा उपदेश जनरंजन (करावे) या बहुत लोग इकट्ठे हों और हमारी कीर्ति बढ़ जायेगी, उसकी भी हमें सहायता मिलेगी। जनरंजन करता है। सेठ! जरा कठिन बात है, हों!

'**जिन द्रोही जिन उत्तं**' क्या कहते हैं? यह जिनधर्म के द्रोही होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। देखो! '**जिन द्रोही जिन उत्तं**' स्वयं नहीं कहते। तारणस्वामी कहते हैं, मैं नहीं कहता, हों! जिन वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव, वे जिनद्रोही कहते हैं। अहो! सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग, उससे विरुद्ध कहता है और उसे भी जनरंजन करने को भला कहते हैं और स्वयं को भी उसमें भले में खपाना है, ऐसा जनरंजन करनेवाला, वीतराग कहते हैं कि वह हमारा द्रोही—वैरी है। वरैयाजी! समझ में आया बड़े भाई! समझ में आया? यहाँ जिनमार्ग में गड़बड़ नहीं चलती, ऐसा कहते हैं। देखो, तारणस्वामी इस ९६ गाथा में कहते हैं। '**जिन द्रोही जिन उत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं।**' देखो, ऐसा मिथ्यात्व का राग है। रागस्वभाव से दुर्गति में जाता है। भले कोई भवनपतिदेव आदि में जाये, पुण्य किया हो न, परन्तु वह दुर्गति है। उसमें कोई आत्मा की सुगति है नहीं। समझ में आया? वह जनरंजन। पश्चात् भी जनरंजन आया न? ९७।

विन्यान न्यान रहियं, राग सहावेन पज्जाव पर दिट्ठं।
न्यान सहावं विरयं, जनरंजन राग नरय वासम्मि॥९७॥

जिसे भेदविज्ञान—राग से मैं भिन्न हूँ, पर अनन्त द्रव्य से मैं भिन्न हूँ, मेरी वस्तु में पर का कोई सम्बन्ध नहीं—ऐसा भेदज्ञान नहीं और रागमय स्वभाव से परपर्याय में रत रहता है। राग और पर में लीन रहता है। वही ठीक है... वही ठीक है... वही ठीक है। **वह ज्ञानस्वभाव से विरक्त है,...** उसे लोगों को प्रसन्न करने का रागभाव रहता है। दुनिया कैसे प्रसन्न हो? हमारी प्रशंसा कैसे करे? जिसका फल नरकवास है। '**नरय वासम्मि**' देखो, समझ में आया? तो उपदेश में जनरंजन नहीं करना। उपदेश तो जैसा वीतराग का रागभावरहित अपना स्वरूप निर्विकल्प, उसकी दृष्टि, ज्ञान, रमणता करो। वही मार्ग भगवान ने कहा। दूसरा मार्ग है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)